कजान से क़रीब दिखने लगा है डी-डॉलराइजेशन

चंद्रभूषण

रूसी शहर कजान में हुए ब्रिक्स शिखर सम्मेलन को लेकर पश्चिमी देशों में और दुनिया भर के वित्तीय दायरों में बना खौफ़ बेमानी साबित हुआ। ब्रिक्स मुद्रा के नाम पर रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पूतिन ने सम्मेलन में पूरी गंभीरता के साथ ऐसा एक नोट जरूर दिखाया, लेकिन यह एक प्रतीकात्मक चीज़ थी। सऊदी अरब के ब्रिक्स का पूर्ण सदस्य बनने और डी डॉलराइजेशन के लिए मज़बूत क़दम उठाए जाने के डर से इस साल की शुरुआत में सोने की ग्लोबल क़ीमतें अचानक चढ़ गई थीं। लेकिन दोनों ही मोर्चों से ऐन मौक़े पर क़दम पीछे खींच लिए जाने के कारण हालात पटरी पर लौट आए हैं। सऊदी अरब ने सदस्यता पर विचार-विमर्श जारी होने की बात कजान सम्मेलन से पहले ही कह दी थी, जबकि व्यापार की समानांतर व्यवस्था बनाने को लेकर ब्रिक्स ने आराम से चलने का फ़ैसला किया है। ध्यान रहे, अभी इसमें कुल नौ ही मुल्क शामिल हैं, लेकिन ब्रिक्स की लाइन में लगे देशों की क़तार काफ़ी लंबी है।

ले-देकर कजान सम्मेलन से एक ही बात पुख़्ता तौर पर निकल पाई है कि दुनिया के सात अमीर मुल्कों का संगठन जी-7 और अमेरिका के नेतृत्व वाला सैन्य संगठन नाटो, अगर पूरी दुनिया को एक डंडे से हांकना चाहते हैं तो यह काम वे बहुत आसानी से नहीं कर पाएंगे। किसी न किसी रूप में कुछ न कुछ विरोध का सामना उन्हें करना ही पड़ेगा। रूस के ख़िलाफ़ उन्होंने सारे संभव प्रतिबंध लगा रखे हैं। व्लादिमीर पूतिन की गिरफ़्तारी का वारंट भी जारी करवा रखा है। इसके बावजूद 36 देशों के शीर्ष नेता और इनके अलावा भी कुछ देशों के अधिकारी, साथ में संयुक्त राष्ट्र महासचिव ब्रिक्स के बहाने रूस में जमा हुए और पश्चिम को हर मामले में मनमानी न चलाने का संदेश दिया।

रही बात विश्व व्यापार की समानांतर अर्थव्यवस्था बनाने और डॉलर के बिना भी खड़े रह पाने की क्षमता विकसित करने की, तो इन मामलों में कोई ठोस क़दम उठाने के लिए यह समय बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं था। रूस की इच्छा इस दिशा में जल्द से जल्द आगे बढ़ जाने की रही है, लेकिन इतना बड़ा फ़ैसला किसी प्रतिक्रिया में या इतने तीखे ध्रुवीकरण के बीच नहीं लिया जा सकता। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से डॉलर के समानांतर कोई मज़बूत मुद्रा खड़ी करने का एक ही गंभीर क़दम अब तक उठाया जा सका है, और वह यूरोपियन यूनियन की साझा मुद्रा 'यूरो' का रहा है। लेकिन इधर के वर्षों से जैसी लड़खड़ाहट यूरो में देखी गई है और बीच में यूरोजोन के कुछ देशों को जिस तरह क़र्ज़ संकट में फंसते देखा गया है, उसका संदेश यही निकलता है कि साझा मुद्रा का मामला ख़ासा चक्करदार है।

लेकिन ब्रिक्स के दायरे में इस तरह की बात कोई शौकिया तौर पर नहीं उठ रही थी, न ही समानांतर व्यापार व्यवस्था की तरफ बढ़ने की प्रक्रिया यहां ठहरने वाली है। अमेरिका ने उसकी मर्ज़ी से न चलने वाले देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने और बात-बात पर उन्हें वित्तीय रूप से प्रताड़ित करने का जो सिलसिला चला रखा है, उसके चलते डॉलर के एकछत्र राज से बाहर आने या उसके अलावा विश्व व्यापार का कोई और इंतज़ाम भी बनाकर रखने की मांग जगह-जगह से उठ रही है। अमेरिका में फिलहाल बने हुए चुनावी माहौल में इस मुद्दे पर कुछ बहस ज़रूर है, लेकिन उसका रुख उलटी तरफ़ जाने का ज़्यादा है। सत्तारूढ़ डेमोक्रेटिक पार्टी की प्रत्याशी कमला हैरिस ने इस मामले में कुछ न बोलने का रुख अपना रखा है, जबकि रिपब्लिकन उम्मीदवार डॉनल्ड ट्रंप की खुली धमकी है कि जिस भी देश ने डॉलर से परे जाने की कोशिश की, उस पर वह 60 प्रतिशत आयात कर लगा देंगे।

डॉलर पर आधारित विश्व व्यापार व्यवस्था क्या है? अव्वल तो यही कि दो देशों के बीच होने वाले व्यापार का हिसाब-किताब डॉलरों में होता है। एक देश की जो रक़म दूसरे देश पर निकलती है, उसे वह डॉलरों में ही लेना चाहता है। यूं कहें

कि डॉलर मुद्राओं की मुद्रा है। दुनिया भर में होने वाले मुद्रा व्यापार में 90 फ़ीसदी हिस्सा डॉलरों का है। बाकी मुद्राएं- मुख्यत: यूरो और येन- दस फ़ीसदी में सिमटी हुई हैं। पिछले दो-तीन वर्षों में कुछेक देशों ने आपसी व्यापार अपनी-अपनी मुद्राओं में करना शुरू किया है और कजान ब्रिक्स शिखर सम्मेलन के घोषणापत्र में इस संगठन से जुड़े देशों और उनके क़रीबी मुल्कों के बीच इसे ज्यादा से ज्यादा बढ़ावा देने की बात कही गई है।

इसमें समस्या यह आती है कि आप के पास अगर किसी देश की मुद्रा ज्यादा मात्रा में जमा हो गई तो आप उसका कुछ कर नहीं सकते। जैसे, पिछले साल व्लादिमीर पूतिन ने ही गुहार लगाई थी कि तेल की क़ीमत के रूप में भारत के बहुत सारे रुपये उनके पास जमा हो गए हैं, लेकिन उनका करें क्या, यह उनकी समझ से बाहर है। कारण यह कि भारत से रूस को होने वाला निर्यात इतना नहीं है कि उसकी क़ीमत के तौर पर ये रुपये उसे सौंपे जा सकें।

इस तरह, अपनी-अपनी मुद्रा में व्यापार करने की प्रणाली एक ही सूरत में कामयाब हो सकती है, जब केंद्रीय बैंक जैसी कोई अथॉरिटी कई स्थानीय मुद्राओं का एक पूल बनाकर रखे और उनका इस्तेमाल बहुपक्षीय व्यापार में करे। ब्रिक्स के बैंक, न्यू डेवलपमेंट बैंक को यह जिम्मा दिया जा सकता है, लेकिन इसके लिए उसका पूंजी आधार बड़ा होना चाहिए। उसके पास भौतिक रूप में इतने स्वर्ण का सपोर्ट मौजूद होना चाहिए कि कोई पक्ष किसी सौदे में अगर अपने पास मौजूद दूसरे देशों की मुद्राओं का इस्तेमाल नहीं कर पा रहा है तो उसका सौदा वह सीधा सोने में कटवा दे। शायद इसी चिंता के तहत ब्रिक्स देशों की सरकारों ने अंतरराष्ट्रीय बाजार में सोने की ख़रीद बढ़ा दी।

एक आंकड़ा बताता है कि 2008 की मंदी के समय ब्रिक्स देशों के सरकारी ख़ज़ाने में 1500 टन सोना था, जो 2023 का अंत आते-आते 6600 टन हो गया। 238 टन सोना तो चीन ने सिर्फ़ जनवरी 2024 के एक महीने में ही ख़रीदा था, वह भी 'सरकारी इस्तेमाल के लिए'। आगे बिटकॉइन जैसी कोई ब्लॉक-चेन आधारित डिजिटल मुद्रा सीमाओं के आर-पार गैर-डॉलर व्यापार को आसान बना सकती है, लेकिन अभी अपनी-अपनी मुद्रा में व्यापार सोने पर ब्रिक्स देशों की निर्भरता बढ़ाने वाला ही साबित
होगा।

इस मामले का दूसरा पहलू 'स्विफ्ट' के समानांतर मुद्रा विनिमय का ढांचा खड़ा करने का है। स्विफ्ट यानी 'सोसाइटी फॉर वर्ल्डवाइड इंटरबैंक फाइनेंशियल टेलीकम्युनिकेशन' देशों के आर-पार मुद्रा की आवाजाही की एक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली है, लेकिन इसका नियंत्रण अमेरिका के हाथ में है। कुछ हद तक यह इंटरनेट जैसा ही है, जिसे दुनिया भर के लोग ख़ास अपनी चीज़ मानते हैं, लेकिन क़ब्ज़ा उस पर पूरी तरह अमेरिका का ही है। ऐसी चीज़ों का इस्तेमाल दंड के औज़ार या दबदबे के हथियार की तरह नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन अभी ऐसा ही हो रहा है।

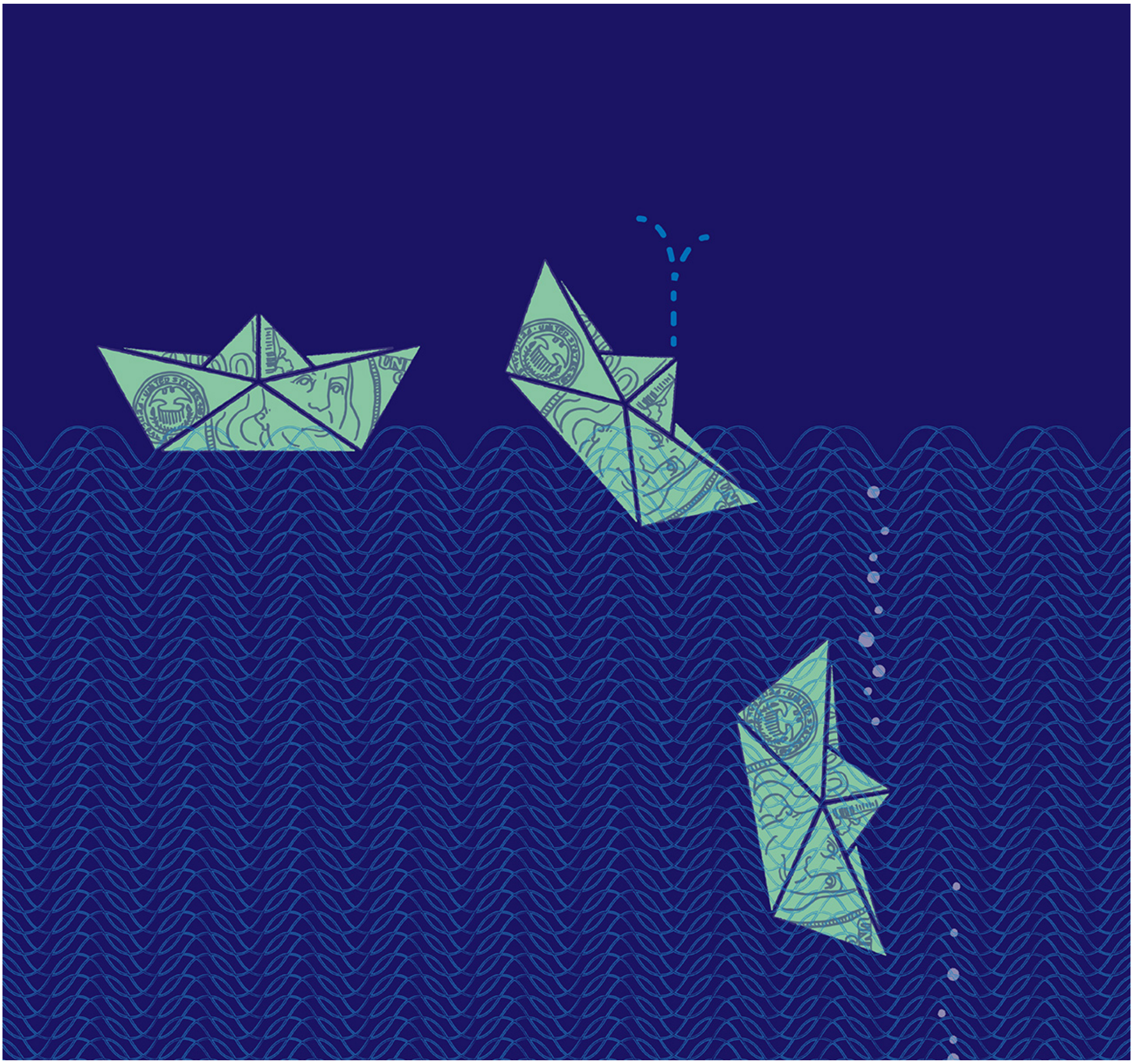

2014 में रूस के ख़िलाफ़ यह काम बराक ओबामा ने किया। फिर डॉनल्ड ट्रंप ने इसे चीन के ख़िलाफ़ आजमाने की धमकी दी। और अभी तो जोसफ बाइडन ने रूस को स्विफ्ट से बाहर ही कर दिया है। इसका जवाब खोजने की कोशिश में रूसियों ने एसपीएफएस और चीनियों ने सीआईपीएस की प्रणाली बनाई, जिनका इस्तेमाल कई देशों के आपसी व्यापार में भी हो रहा है। लेकिन ये अलग-अलग या आपस में जुड़कर स्विफ्ट का विकल्प बन सकें, यह आसान नहीं है। कजान में रूस की तरफ़ से यह प्रस्ताव रखा गया था, लेकिन दुनिया के सारे विकासशील देश अमेरिका और यूरोप की साझा वित्तीय शक्ति से डरे हुए हैं।

ऐसा एक ढांचा समय की ज़रूरत है। इसके बिना अमेरिका की प्रजा बनकर जीना, उसकी नज़र देखकर ही कुछ करना दुनिया की मजबूरी बना रहेगा। लेकिन इस काम की शुरुआत बिना शोर मचाए, छोटे पैमाने पर ही करनी होगी। शायद अगले साल ब्राज़ील में इस पर थोड़ा और आगे बढ़ा जा सके। डॉलर के इर्द-गिर्द घूम रही विश्व वित्तीय व्यवस्था हक़ीक़त में एक छलावा है और कभी न कभी तो इसे ध्वस्त होना ही है।

एक ग्लोबल मुद्रा के रूप में डॉलर को 'फिएट मनी' यानी सिर्फ हुकुम पर चलने वाली मुद्रा कहा जाता है, जिसके पीछे

अमेरिकी चमक-दमक की ख़बरों के अलावा स्थायी मूल्य वाला कोई ठोस आधार नहीं है। 1971 से पहले कम से कम काग़ज़ी तौर पर डॉलर का एक स्वर्ण मूल्य हुआ करता था। उस समय सोवियत संघ और उसके क़रीबी देशों को छोड़कर दुनिया की ज़्यादातर अर्थव्यवस्थाएं डॉलर के साथ निश्चित विनिमय मूल्यों पर बंधी हुई थीं। यह व्यवस्था 1944 में, यानी द्वितीय विश्वयुद्ध के आख़िरी दौर में अमेरिका के न्यू हैंपशायर प्रांत के कैरल शहर की ब्रेटन-वुड्स बस्ती में हुई एक वित्तीय बैठक में बनाई गई थी। बाद में इसी के तहत आईएमएफ और वर्ल्ड बैंक की स्थापना हुई।

इस बैठक में तय किया गया था कि डॉलर की क़ीमत सोने के साथ 35 डॉलर प्रति औंस के हिसाब से बंधी रहेगी और सम्मेलन में शामिल 44 देशों की मुद्राएं डॉलर के साथ इस तरह जुड़ी रहेंगी कि उनकी सापेक्ष क़ीमतों में एक प्रतिशत से ज़्यादा का उतार-चढ़ाव न आने पाए। वियतनाम युद्ध के चलते यह व्यवस्था 1971 में ध्वस्तप्राय दिखने लगी और 1976 में इसे औपचारिक रूप से समाप्त कर दिया गया। उसके बाद से दुनिया की सारी मुद्राएं आगे-पीछे 'फ़्री-फ्लोट' कर रही हैं। ऐसी व्यवस्था वैश्विक आम सहमति से ही चल सकती थी, जो काफ़ी पहले भंग हो चुकी है।

यूक्रेन में बुरी तरह फंस गए पश्चिमी मुल्कों का मीडिया यह दिखाने की कोशिश में है कि कजान में बहुत अलग तरह के मन मिज़ाज वाले नेताओं के हल्के-फुल्के भाषण छोड़कर कुछ हुआ ही नहीं। लेकिन सचाई यह है कि दुनिया का इस तरह दो ध्रुवों में बंटी हुई दिखना, ख़ासकर इतने सारे मुल्कों का ग्लोबल वित्तीय प्रणाली को लेकर एक साथ अपना असंतोष जाहिर करना पश्चिम के एस्टैब्लिशमेंट के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द है। वह तो व्लादिमीर पूतिन ने पिछले एक साल में डी-डॉलराइजेशन और समानांतर व्यापार प्रणाली को लेकर इतना तूमार बांध दिया था कि कजान शिखर सम्मेलन में आए कई देशों को ज़्यादा उग्र दिखने की चिंता सताने लगी, और एक साझा फैसले के तहत सबने धीरे चलने का रुख अपना लिया। कुछ ब्रिक्स देशों का रुख इसे अल्टीमेटम की तरह पेश करने का है। लेकिन अमीर मुल्कों के राजनीतिक अर्थशास्त्र में अब इतनी लोच नहीं बची है कि समय रहते वे हालात संभाल लें।

(लेखक सुपरिचित कवि और विचारक हैं)